Scholarly Research Journal for Humanity Science & English Language,
Online ISSN 2348-3083, SJ IMPACT FACTOR 2019: 6.251, www.srjis.com
PEER REVIEWED & REFEREED JOURNAL, JUNE-JULY, 2020, VOL- 8/40

सत्ता, साहित्य और अस्मिता

विनीत कुमार सिन्हा, Ph. D.

पी जी डी ए वी महाविद्यालय (सांध्य), दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली- 110065

binit_sinha2004@yahoo.com

Abstract

वैसे तो महाभोज समाज के तत्तकालीन राजनीतिक विषय पर एक बेहतरीन विश्लेषणात्मक समीक्षा है, परन्तु उनके द्वारा प्रयुक्त चरित्र के माध्यम से हमने उस दशक में सामर्थ्य और अस्मिता के उभार के कारण दमित वर्ग के सत्ता में अपना प्रतिनिधित्व् के प्रति विशेष आग्रह को वैश्विक रूप से दिखाने का प्रयास किया है। सत्तर के दशक में विश्व के हर भाग से हासिए पर होने वाले समुदायों के प्रति चिंता और व्यवस्था एवं प्रक्रिया द्वारा कुछ बेहतर करने का भाव इस दशक की महत्त्वपूर्ण विशेषता है। लेकिन यह बात उतनी ही सच है यहाँ केवल पूर्ति पक्ष ही प्रभावी नहीं है की इस वर्ग को उचित प्रतिनिधित्व मिले इसकी चिंता हो रही है, वरन मांग पक्ष भी अर्थात हासिए पर रहने वाले दमित समाज भी उचित प्रतिनिधित्व लेने के लिए पूरी तैयारी कर चुका है। कांशीराम जी का यह कहना कि वोट हमारा राज तुम्हारा नहीं चलेगा, राजनीति के विशिष्ट वर्गीय चरित्र को एक मजबूत चुनौती दिए जाने की एक दृढ़ राजनीतिक प्रयास है। चाहे साहित्य का मुख्य चरित्र हो, राजनीति के केंद्र में इस वर्ग को लाने की बाध्यता रही हो, सिद्धांतों की संरचना के मूल में हीनतम के नाम पर इन्हें लाने कोशिश हो या फिर इनके लिए काम करने वालों को सम्मान देना हो, राजनीतिक- सामाजिक प्रतिनिधित्व के लिए आवश्यक पूर्ति और मांग पक्ष में संतुलन की कोशिश के साथ ही संतुलन बनाने का एक प्रयास भी है। इस प्रयास में भारतीय न्यायपालिका के कुछ चुनिंदा निर्णय इस मील के पत्थर सिद्ध हुए हैं।

मुख्य शब्द: सत्ता, अस्मिता, दमित, प्रतिनिधित्व, पूर्ति- मांग पक्ष, राजनीतिक- सामाजिक प्रतिनिधित्व, सिद्धांतों की संरचना, राजनीति के विशिष्ट वर्गीय चरित्र।

Scholarly Research Journal's is licensed Based on a work at www.srjis.com

प्रस्तावना:

मेरा यह आलेख साहित्य में सत्ता की खोज में अस्मिता और उसपर गर्व करने वाली प्रवृति का राजनीति पर पड़ने वाले प्रभाव की समीक्षा करने की कोशिश है। यह समीक्षात्मक विश्लेषण मन्नू भंडारी जी के महाभोज उपन्यास पर आधारित है। मन्नू भंडारी अपने इस उपन्यास के माध्यम से तत्तकालीन राजनीति की दशा और दिशा दिखाने का काम किया है।" लावारिस लाश को गिद्ध नोच नोच कर खा जाते हैं" अपने उपन्यास को इस वाक्य से आरंभ करने के कई मायने हो सकते है और हमें लगता है कि यही वह वाक्य है जो महाभोज में वर्णित सामाजिक-राजनीतिक समस्याओं का वर्णन बेहतर ढंग से किया है।

Copyright © 2020, Scholarly Research Journal for Humanity Science & English Language

यह उपन्यास मन्नू भंडारी द्वारा 1979 **में लिखी गयी है और पूरी कहानी पश्चिम उत्तर प्रदेश के सिरोहा गाँव से संबंधित है। यह वह समय है जब भारतीय समाज में नारी अपने चौखट से बाहर कदम रखने भर को नहीं सोच सकती थी, परन्तु मन्नू भंडारी अपने समय के राजनीतिक व्यवस्था में पिसते एक समुदाय की पीड़ा को दलित समाज का पढ़ा लिखा बिसेसर के माध्यम से बेहतरीन ढंग से दिखाया है। बिसेसर एक पढ़ा लिखा व्यक्ति हैं जो शहर से गाँव आते ही अपने समाज में शिक्षा का अलख जगाना चाहता है। वह शोषित, पीड़ित, दमित एवं वंचितों के साथ होने वाले हर तरह के अन्याय के खिलाफ खड़ा होने के लिए अपने ग्राम वासी को तैयार करने की भी कोशिश करना चाहता है। बाबा साहब अंबेडकर का यह विचार कि शिक्षित बनो, संघठित रहो और संघर्ष करो, बिसू को काफी प्रभावित करता है और इस वाक्य से काफी प्रेरणा भी लेता है। लेकिन यहाँ सवाल यह भी है कि क्या दलित बिसू का पढ़ा लिखा होना समाज के शोषक शक्तियों के लिए स्वीकार्य भी है या यही बिसू के लिए अभिशाप बन जाता है। यहाँ बिसू की हत्या में अभिशाप होने का ही प्रमाण मिलता है।**

मेरे मन में सवाल यह भी उठता है कि सत्तर के दशक में आखिर ऐसी कौन सी परिस्थितयाँ बनती है कि एक महिला उपन्यास लिखती हैं और उसके कथानक के केंद्र में एक दलित होता है। क्या यह किसी रणनीति का भाग था या फिर परिस्थितियों का दबाव? राजनीति विज्ञान का विद्यार्थी होने के नाते इस विषय का राजनीतिक विश्लेषण करते हुए आगे बढ़ने की मेरी एक कोशिश है।

सत्तर का दशक न केवल भारत के लिए वरन पूरे विश्व में एक शांति काल के लिए जाना जाता है। ऐसा इसलिए कि द्वितीय विश्व युद्ध के बाद की परिस्थितियों में पूरा विश्व दो ध्रुवों में विभाजित होता है और एक जो समाजवादी ध्रुव है उसका नेतृत्व सोवियत संघ के हाथ में हैं जबकि उदारवादी ध्रुव का नेतृत्व अमेरिका करता है। दोनों के बीच वैचारिक मतभेद उभरते हैं और वर्चस्व की इस लड़ाई में अपने साथ अन्य देशों के समर्थन के लिए आर्थिक, रणनीतिक और सैन्य समर्थन देने की रणनीति आगे बढ़ती है। 1962 **में एक वक्त ऐसा भी आता है कि यह वैचारिक मतभेद अब तृतीय विश्व युद्ध में न बदल जाए, परन्तु ऐसा होने से दोनों देशों के नेतृत्व ने बचा लिया। फिर बातचीत का सिलसिला शुरू होता है और संघर्ष एवं संघर्ष की किसी संभावना को रोकने हेतु कई संधि समझौते होते हैं और सत्तर के आते ही देतांत अर्थात शांति काल जैसी स्थिति बनती है। यही वह दशक है जहाँ पूरी दुनियाँ में जीवन के गुणवत्तापूर्ण दशा और दिशा के लिए विभिन्न प्रकार के सामाजिक राजनीतिक और अस्मिता पर आधारित आंदोलन शुरू होते हैं। महिलाएं आगे आती हैं और अपने अधिकारों के लिए मांग उठाना**

Copyright © 2020, Scholarly Research Journal for Humanity Science & English Language

शुरु करती हैं। साहित्य, राजनीति, सिद्धांत और सहानुभूति, साहस, सामर्थ्य एवं अस्मिता के केंद्र में समाज का हीनतम, दीन- हीन या दमित समाज को एक सम्मान और गरिमापूर्ण जगह देने की बात शुरू होती है। इसे उदाहरणों से समझते हैं। एक महिला द्वारा लिखित महाभोज में राजनीति के केंद्र में दलित बिसेसर को जगह देना इसकी मिसाल है। यह कहानी सिरोहा गाँव की भले हो, लेकिन पूरी दुनियां में ज्ञान का अलख जगाने वाला बिहार का नालंदा जिला के बिहार शरीफ के पास बेलछी गाँव में ऐसी घटना घटित भी हुआ। दीन हीन दमित समाज के ग्यारह लोगों को जिंदा जला दिया गया था। ये हत्याएं कितनी नृशंस रही होगी। इस वास्तविक घटना के केंद्र में भी बिसू जैसा एक पढ़ा लिखा व्यक्ति है जिसके साथ दस और लोगों की हत्या हुई। दा साहब और सुकूल बाबू जैसा किरदार यहाँ भी है। श्रीमति इंदिरा गांधी जब बिहार- शरीफ पहुंचती हो तो खुब जोरों की बारिश होती है। बेलछी गांव में उनकी एंबेसडर कार नहीं जा पा रही है, बारिश इतनी मूसलाधार थी कि ट्रैक्टर भी बेलछी गांव पहुंचने के पहले वाली नदी पार नहीं कर पा रहा है लेकिन, फिर भी इंदिरा जी को बेलछी गांव इसलिए पहुंचना है कि उन दमित परिवारों को सांत्वना दें सके। हाथी की व्यवस्था की गई और नदी पार करके बेलछी पहुंचना संभव हुआ। बिसू की हत्या के बाद दा साहब और सूकूल बाबू ऐसा ही तो करने की कोशिश में राजनीति के शह- मात के खेल में अपने लिए शतरंज की गोटी बैठा रहे हैं। इंदिरा जी जब उस परिवार के पास पहुंचती हैं तो गांव वाले बहुत खुश होते हैं, उनके लिए और साथ गयी श्रीमति प्रतिभा पाटिल के लिए सुखे कपड़े और मिठाई की व्यवस्था होती है। दोनों पक्ष खुश हैं और गांव वाले इस ग्लानि से भर उठते हैं कि पिछली चुनाव में आपको अपना वोट क्यों नहीं दिया। इस बार कोई गलती नहीं होगी, गांववासी इंदिरा जी को ऐसा विश्वास दिलाकर दिल्ली वापस भेजते हैं। दिल्ली पहुंच कर इंदिरा जी की बेलछी यात्रा पर विमर्ष शुरु होता है। श्रीमति सोनिया गांधी के बायोग्राफी "रेड साड़ी" के लेखक जविएर मोरों ने अपनी पुस्तक में 'बेलछी कांड' को कांग्रेस के लिए संजीवनी की संज्ञा दी है। मोरों सहित कुछ विशेषज्ञों का यह भी मानना है कि 1980 में कांग्रेस की वापसी में बेलछी कांड और उस कांड के माध्यम से की गई राजनीति का भी महत्त्वपूर्ण प्रभाव रहा है। यहाँ कहने का आशय यह है कि दलित एक वोट और दलित समाज एक वोट बैंक से ज्यादा कुछ नहीं की जगह दलित अस्मिता अब राजनीति को प्रभावित करने की स्थिति में आनी शुरू होती है। दलित समाज के लोग अब समझौता करने की बात करने लगते हैं। इसका सबसे अच्छा उदाहरण सत्तर के दशक में कांशीराम के उदय और उनकी राजनीतिक गतिविधियों में देखा जा सकता है। 1971 **में अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और पिछड़ा वर्ग रोजगार कल्याण संघ की स्थापना के साथ ही उनका**

Copyright © 2020, Scholarly Research Journal for Humanity Science & English Language

मानना है कि वोट हमारा राज तुम्हारा नहीं चलेगा, ऐसा वे दृढ़ निश्चय करते हैं। यह एक स्लोगन मात्र नहीं है बल्कि राजनीतिक भागीदारी सुनिश्चित करने के प्रति एक शंखनाद है। राजनीतिक वैज्ञानिक डिएगो गार्सिया का भी मानना है कि सत्तर के दशक में भारत के बहुसंख्यक मतदाताओं में यह मांग जोर पकड़नी शुरू होती है कि अब इन्हें राजनीतिक प्रतिनिधित्व से कम कुछ भी नहीं चाहिए, क्योंकि इसी समय गरीब का समर्थन पाने के लिए इंदिरा जी ने गरीबी हटाओ नारा दिया था ताकि राजनीतिक रूप से गरीबों के मुद्दे को संबोधित कर उन्हें अपने पक्ष में लाया लाया जा सके। कांशीराम जी 1973 **में बामसेफ बनाकर पिछड़े एवं अल्पसंख्यक समुदाय को अपने साथ लाने की कोशिश करते हैं। दलित समाज में जागरूकता लाने के लिए उन्होंने अंबेडकर मेला आॅन व्हील शुरू किया जिससे बाबा साहब के अपने जीवन संघर्षों को और इस समाज के हितों के लिए कितना संघर्ष किया है, सभी के साथ साझा करके भावनात्मक रूप से अपने साथ जोड़ सकें। कांशीराम जी का स्पष्ट मानना था कि यदि हम सभी मिल जाते हैं ,साथ आते हैं तो हममें यह क्षमता है कि हम भिखारी से शासक बन जाएं। इसका एक वजह यह भी है कि जैसा कि मायरन वीनर कहते हैं कि कांग्रेस अपने आरंभ से ही मध्यम और अनुसूचित जाति को न तो सदस्य बनाने में ही और न ही नेतृत्व देने में बहुत इच्छुक रही है। आपातकाल लगाने के बाद संजय गांधी जी की झुग्गी हटाने की नीति ने इस समाज को और भी कांग्रेस से दूर करने में मदद किया।**

दर असल, यह दशक दमित, दीन हीन और गरीबों के हितों के बारे सैद्धांतिक स्तर पर भी विमर्श शुरु होने का भी है। अमेरिकी राजनीतिक सिद्धांतकार जाॅन राल्स 1971**में एक पुस्तक ' द थ्योरी आॅफ जस्टिस' लिखते हैं और पहले से चली आ रही उपयोगितावादी मान्यता कि यदि अधिकतम लोगों को अधिकतम सुख मिल रहा है तो वह समाज और व्यवस्था न्यायपूर्ण है, इसे उन्होंने चुनौती दिया। क्योंकि यहां समस्या यह उठ रही थी कि जो संख्या में कम है और जिनके साथ व्यवस्थागत अन्याय हो रहा है तो उन्हें न्याय कैसे मिले। ऐसे में उन्हें न्याय पाने के लिए अनंत समय तक इंतजार करना पड़ सकता है और यह भी संभव है कि अंत में उन्हें कभी न्याय मिले ही नहीं। जाॅन राल्स तब कहते हैं कि व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए की समाज के हीनतम लोगों को अधिकतम मिल सके। ऐसा करने के लिए सकारात्मक कारवाई जायज और आवश्यक भी है। यही दशक है जिसमें गरीबों, दीन दुखिया, बीमार जैसे मानव सेवा के लिए नार्वे में बैठा नोबल अवार्ड कमिटि मदर टेरेसा** (1979) **के लिए शांति का नोबेल देने की घोषणा करते है और** 1980 **में भारत का सर्वोच्च नागरिक सम्मान भारत रत्न देने की घोषणा होती है। हालांकि मदर टेरेसा के सेवा भाव को लेकर आलोचना भी काफी हुई हैं कि उनका छिपा एजेंडा धर्मांतरण था न कि**

सेवा भाव। सेवा कार्य तो अपने धर्मांतरण एजेंडे को न्यायोचित और उचित ठहराने के लिए एक प्रक्रियागत और संरचनात्मक यंत्र मात्र के रुप में एक सफलतम प्रयोग भर था। अन्यथा, महिला के अधिकारों का वह विरोध न करती। यहां केवल मेरा इतना कहना है कि पूरी दुनियां में इस दशक में समाज के हाशिए पर रहे रहे लोगों के बारे में व्यवस्थागत विमर्श की शुरूआत हो जाती है।

दूसरी ओर, यदि भारतीय न्यायपालिका की बात करें तो इसी दशक में संसदीय सर्वोच्चता को सीमित करते हुए भारतीय सर्वोच्च न्यायालय ने 1973 **में संविधान का आधारभूत सिद्धांत का प्रतिपादन किया।** 1978 **में मेनका गांधी के वाद में यह निर्णय आया कि जीवन जीने का अधिकार गरीमापूर्ण जीवन जीने से है और इसतरह न्यायिक सक्रियता के लिए एक आधार भी तैयार किया। यह निर्णय एक मील का पत्थर सिद्ध हुआ और अगले ही वर्ष से पोस्टकार्ड भी जनहित याचिका में बदलनी शुरु हुई। बिहार के भागलपुर केंद्रीय कारागृह में ऐसे बहुत से कैदी थे जिनकी एक बार भी कोर्ट में पेशी और सुनवाई नहीं हो पाई थी, जबकि जिस केस में और जितने दिनों से वे लोग जेल में बिना ट्रायल के बंद थे उससे कम ही उस केस में सजा का प्रावधान था। भागलपुर जिला न्यायालय की एक वकील हुसैनारा खातून ने वहीं से सर्वोच्च न्यायालय को एक पोस्टकार्ड लिखा और वही पोस्टकार्ड पहली जनहित याचिका बन गयी। इसका मतलब यह हुआ कि अब कोई भी गरीब, मजबूर और असहाय लोगों के लिए न्यायालय में याचिका लगा सकता है केवल उसे अपने स्वभाव में जनहित होना जरूरी है। न्यायलय में यह परिवर्तन मेनका गांधी वाद में दिए निर्णय से आया है।** 1975 **में जब आपातकाल की घोषणा हुई और उस वजह से लोकतांत्रिक अधिकारों और नागरिक स्वतंत्रता का दमन होने लगा तो जय प्रकाश नारायण ने पी यू डी आर और सी एल का इसे बचाने के लिए गठन किया। बाद में ये संगठन दोनों अलग हुए और अभी भी कार्य कर रहे हैं।**

निष्कर्ष:

इस तरह देखते हैं कि समाज के हाशिए पर रहने वाले लोगों के लिए यह दशक महत्त्वपूर्ण दशक बनकर हमारे सामने आता है। चाहे राजनीति, न्यायपालिका, कार्यपालिका, सैद्धांतिक या फिर सामाजिक सेवा का क्षेत्र हो सभी इन समूहों के प्रतिनिधित्व की ओर इशारा भी कर रहे हैं और इसके लिए कोशिश भी कर रहे हैं।

दूसरी ओर,अपने इस आलेख के माध्यम से दलित अस्मिता के उभरते प्रतिमान को भी दिखाने का मैंने प्रयास किया है। बेलछी कांड का मुख्य किरदार और महाभोज का बिसू में काफी समानता दिखती है। इसके साथ ही यदि कांशीराम जी के भारतीय राजनीति में उदय, विकास और भूमिका का मूल्यांकन करेंगे तो उन्हें भी हम उन्हीं

Copyright © 2020, Scholarly Research Journal for Humanity Science & English Language

नायक के जैसा और उनके साथ पाते हैं। अंतर केवल इतना है कि बेलछी कांड और सिरोहा के बिसू की हत्या हो जाती है जबकि कांशीराम अपने मजबूत इरादे और बेहतर राजनीतिक रणनीति के द्वारा एक इतिहास लिखने में सफल रहते हैं। अंत में, निष्कर्ष के रूप में मेरा यह दृढ़ मान्यता है कि लेखक, चिंतक, राजनीति, साहित्य, सिद्धांत, सम्मान या अस्मिता पर गर्व कर पाने का सामर्थ्य या राज्य व्यवस्था की कोई भी संस्थाएं रही हो, इन सभी के द्वारा दमित समाज के हित और उनके हक में ही आवाज उठाई जाती।

संदर्भ:

1. ***भंडारी, मन्नू****(2019)' **महाभोज' राधाकृष्ण प्रकाशन प्राईवेट लिमिटेड, दिल्ली, छियालिसवां संस्करण***
2. ***राल्स, जाॅन****(1971)' **द थ्योरी आॅफ जस्टिस' बेल्कनेप प्रेस***
3. *Weiner, Mynor' The Stuggle for Equality: Caste in India Politics and Society in 1970s in Autumn of the Matriach. Indira Gandhi's final term in office(Published to Oxford scholarship online: May 2015)*
4. *Weiner, Myron' The Struggle for Equality: Caste in India Politics in ' The Success of India's Democracy(ed) by Atul Kohli(2001), Cambridge University Press*
5. *Brass, Paul(1984)' Caste, Faction and Indian Politics: Election Studies, Chanakya Publications.*
6. *Rudolph I. Lloyd and Rudolph, Susane Hoeber(1967)' The Modernity of Tradition: Political Development in India, University of Chicago Press.*
7. *Brass, Paul(reprint in 2010)' The Politics of India Since Independence, CUP.*
8. *forwardpress.in/2018/10/mahabhoj-rajniti-me-pista- dalit-samaj- ka-dasta/*
9. *marginalised.in/2018/08/26/belchi-massacre-when-11-dalit-labour-were-burnt-alive/*
10. *roundtable India.co.in/india.php?option=com_content&view=arti id=1005.kanshi-ram-from-bamcef-to-the-bahujana-samaj-party&cutie=127&Itemid=158*

Copyright © 2020, Scholarly Research Journal for Humanity Science & English Language